# टी० वेंकट रेड्डी और अन्य

बनाम

# आन्ध्र प्रदेश राज्य

(27 मार्च, 1985)

(मुख्य न्यायाधिपति वाई० वी० चन्द्रचूड़ न्यायाधिपति डी० ए० देसाई, ओ० चिन्नप्पा रेड्डी, ई० एस० वेंकटरामय्या और रंगनाथ मिश्र)

संविधान 1950—अनुच्छेद 123(2) और 213(2)—राष्ट्रपति और राज्यपाल की अध्यादेश प्रख्यापित करने की विधायी शक्ति—राष्ट्रपति या राज्यपाल का एकमात्र रूप में ऐसी परिस्थितियों के विद्यमान होने की बाबत समाधान होना आवश्यक है कि अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता है—ऐसी आवश्यकता विद्यमान है या नहीं इस बारे में न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता।

संविधान, 1950—अनुच्छेद 213—(सपठित आंध्र प्रदेश अबोलिशन आफ पोस्ट्स आफ पार्ट टाइम विलेज आफिसर्स आर्डिनेंस, 1984 की धारा 3 और 4)—राज्यपाल द्वारा जारी अध्यादेश व्यपगत—राज्य विधानमण्डल द्वारा उसके स्थान पर कोई अधिनियम पारित न किया जाना—विधानमण्डल द्वारा अध्यादेश के अनुमोदन न करने मात्र से पूर्ण संव्यवहार पुनरुज्जीवित नहीं हो सकता, अतः उक्त अध्यादेश के अधीन ग्राम अधिकारियों के समाप्त किये गये पद पुनः सर्जित नहीं किये जा सकते।

आन्ध्र प्रदेश राज्य के राज्यपाल ने आन्ध्र प्रदेश एबोलिशन आफ पोस्ट्स आफ पार्ट-टाइम विलेज आफिसर्स आर्डिनेंस, 1984 (आन्ध्र प्रदेश अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों का उत्सादन अध्यादेश, 1984) प्रख्यापित किया जिसके द्वारा आन्ध्र प्रदेश राज्य में अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पद समाप्त कर दिये गए और ग्राम सहायकों की नियुक्ति के लिए व्यवस्था की गई। पिटीशन आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में अनुतोषों के लिए फाइल किये गए। अध्यादेश में "अंशकालिक ग्राम अधिकारियों" को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया जो मुखिया, मुन्सिफ, रेड्डी, मोनिगर पट्कपू, पटेल,

कारनाम, पटवारी या त्रयूने अधिकारी या स्थानीय रूप में पुकारे जाने वाले ऐसे ग्राम पद जिसमें (1) द आन्ध्र प्रदेश (आन्ध्र एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1969, (2) आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1978 या (3) किसी अन्य विधि के अधीननियुक्त किये गए उनके सहायक भी सम्मिलित है। पिटीशनर अध्यादेश प्रख्यापना की तिथि के तत्काल पूर्व इन पदों के धारक थे। आन्ध्र प्रदेश राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन "आन्ध्र क्षेत्र" और "तेलगांना क्षेत्र" को मिलाकर गठित आन्ध्र प्रदेश राज्य में ग्राम प्रशासन को शासित करने वाली विभिन्न प्रकार की विधि प्रवर्तन में थीं। आन्ध्र क्षेत्र में ग्राम स्थापना में मुखिया और कारनाम के रूप में ग्राम अधिकारी और तलयारी, वेत्ती औन नीरगन्टी के रूप में ग्राम सेवक सम्मिलित थे। ये मूलतः आनुवंशिक पद थे। इस प्रकार के आनुवंशिक पद तेलंगाना क्षेत्र में, ग्राम स्थापना में पटवारी, माली पटेल और पुलिस पटेल के रूप में ग्राम अधिकारियों और शेठसिंधी और नीरदी के रूप में ग्राम सेवक के पद भी सम्मिलित थे। आन्ध्र प्रदेश सरकार ने राज्य में ग्राम स्थापना के लिए एक स्कीम की प्रस्थापना करने के लिए विलेज आफिसर्स इनक्वारी कमेटी के नाम से एक समिति ग्राम स्तर पर कार्य कर रहे अशंकालिक अधिकारियों की वर्तमान प्रणाली की उपयोगिता की जांच करने के लिए नियुक्त की। उक्त समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि ग्राम अधिकारियों के लिए पर्याप्त कार्य नहीं है और यह कि अधिक कार्य की मात्रा के साथ अंशकालिक अधिकारियों की नियुक्ति द्वारा ग्राम स्थापना का पुनर्गठन आवश्यक है। समिति ने सिफारिश की कि कर्तव्यों के विलयन और उस क्षेत्र में वृद्धि करके, जिसमें कि ग्राम अधिकारी अधिकारिता का प्रयोग कर सकते थे, पदों की संख्या घटाने के लिए कदम उठाये जाने चाहिए। कालांतर में, आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन आन्ध्र प्रदेश (आन्ध्र एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1969 प्रख्यापित किये जिनके द्वारा आन्ध्र प्रदेश राज्य के आन्ध्र क्षेत्र के विनियमन के लिए व्यवस्था की गई। आन्ध्र प्रदेश विधानमण्डल ने आन्ध्र प्रदेश वतन (समाप्ति) अधिनियम, 1978 पारित किया जो राज्य के तेलगाना क्षेत्र में शेठसिंधियों और नीरदियों के अलावा समस्त वतनों (ग्राम पदों के साथ-साथ उनसे संबंधित संपत्तियों सहित) को समाप्त करते हुए प्रवर्तन में आया। साथ ही साथ, राज्यपाल ने तेलंगाना क्षेत्र में ग्राम अधिकारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों के लिए उपबंध करते हुए आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1978 प्रख्यापित किये। इन दोनों क्षेत्रों में ग्राम अधिकारी अब भी अंशकालिक अधिकारी थे। आंध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेश को संविधान के अनुच्छेद 32

1985(3) eILR(PAT) SC 1



के अधीन उच्चतम न्यायालय में फाइल किया गया। पिटीशन खारिज करते हुए,

**अभिनिर्धारित**—संविधान के अनुच्छेद 123 के अधीन राष्ट्रपति को और 213 के अधीन राज्यपाल को प्रदत्त शक्तियां विधायी शक्तियां हैं जिनका प्रयोग संबंधित विधानमण्डल के पूर्व अनुमोदन के बिना किया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 123 के खण्ड (2) और अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) की भाषा संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। इन दोनों अनुच्छेदों में से किसी के अधीन पुरःस्थापित किए गए अध्यादेश का यथास्थिति संसद या राज्य विधानमण्डल के किसी अधिनियम के जैसा ही बल और प्रभाव होगा। जब एक बार उपर्युक्त निष्कर्ष दे दिया जाता है तो अगला विचारणीय प्रश्न यह होगा कि क्या मस्तिष्क का प्रयोग न करने या असद्भावपूर्वक करने के आधार पर किसी अध्यादेश को अभिखण्डित करना अनुज्ञेय है या यह कि विद्यमान परिस्थितियों में अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता नहीं थी। दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह है कि क्या किसी अध्यादेश की विधिमान्यता का ऐसे आधारों पर परीक्षण किया जा सकता है जो उसी प्रकार के हैं जिन पर किसी कार्यपालिक या न्यायिक कार्रवाई का परीक्षण किया जाता है। हमारे संविधान के अधीन विधायी कार्रवाई केवल संविधान द्वारा विहित परिसीमाओं के ही, अध्यधीन है और किसी अन्य के अध्यधीन नहीं। कोई विधि जो ऐसे विधानमण्डल द्वारा बनाई गई है, जो उसे पारित करने के लिए सक्षम नहीं है, और जो संविधान के भाग 3 के उपबंधों या किसी अन्य सांविधानिक उपबंधों का उल्लंघन करती है तो अप्रभावी होगी। सांविधानिक विधि का यह निश्चित नियम है कि यह प्रश्न कि क्या कोई कानून सांविधानिक है या नहीं, संबंधित विधानमण्डल की शक्ति से संबंधित प्रश्न है, और कानून की विषय-वस्तु पर निर्भर करता है और किस रूप में यह पूरा किया जाता है तथा इसे अधिनियमित करने के तरीके पर निर्भर करता है। जबकि न्यायालय किसी कानून को उस समय असांविधानिक घोषित कर सकते हैं जब यह सांविधानिक परिसीमाओं का अतिक्रमण करता है, किन्तु वे विधायी शक्ति के प्रयोग के औचित्य की जांच करने से प्रवारित हैं। यह धारणा करनी पड़ती है कि विधायी विवेक का उचित रूप में प्रयोग किया गया। कानून पारित करने में विधान-मण्डल का हेतु न्यायालयों की संवीक्षा से बाहर है। न ही न्यायालय इसकी परीक्षा कर सकते हैं कि क्या विधानमण्डल ने उसे पारित करने से पूर्व किसी कानून के उपबंधों के प्रति अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया था। किसी विधायी कार्यवाही का औचित्य, समीचीनता और आवश्यकता विधायी प्राधिकार की

1985(3) eILR(PAT) SC 1

अवधारणा के लिए है, न कि न्यायालयों द्वारा अवधारित किये जाने के लिए। संविधान के अनुच्छेद 123 या 213 के अधीन पारित अध्यादेश भी उसी प्रकार है। जब संविधान में यह कहा गया है कि अध्यादेश बनाने की शक्ति विधायी शक्ति है और कोई अध्यादेश वैसा ही बल रखेगा जैसा कि कोई अधिनियम, तो अध्यादेश को संविधान के अधीन अपनी समस्त घटनाओं, उन्मुक्तियों और परिसीमाओं को रखते हुए विधानमण्डल के किसी अधिनियम की समस्त विशेषताएं रखनी चाहिएं। इसे कार्यपालिक कार्रवाई या प्रशासनिक विनिश्चय नहीं माना जा सकता। (पैरा 9 और 14)

अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) में कहा गया है कि इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित कोई अध्यादेश वैसा ही बल और प्रभाव रखेगा जैसा कि राज्यपाल द्वारा अनुमति प्रदान किया हुआ राज्य विधानमण्डल का कोई अधिनियम, किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश (क) राज्य की विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, या जहां राज्य में विधान परिषद् है, तो दोनों सदनों के समक्ष और विधानमण्डल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा या यदि उस अवधि के समाप्त होने से पूर्व विधान सभा द्वारा उसके अननुमोदन का संकल्प पारित कर दिया जाता है और, यदि किसी विधान परिषद् द्वारा उस संकल्प के पारित किये जाने पर उसके प्रति सहमति व्यक्त कर दी जाती है या, यथास्थिति, संकल्प पर विधान परिषद् द्वारा सहमति व्यक्त की जा रही है और (ख) राज्यपाल द्वारा इसे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि संविधान के अनुच्छेद 213 में यह नहीं कहा गया है कि विधानमण्डल द्वारा उसके अननुमोदन के साथ ही अध्यादेश आरंभ से शून्य होगा। उसमें यह कहा गया है कि यह प्रवर्तन में नहीं रहेगा। इसका अभिप्राय है कि इसे उस समय तक प्रभावी समझा जाये जब तक कि अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) में उल्लिखित घटनाओं के घटने पर यह प्रवर्तन में नहीं रहता। (पैरा 19)

वह उक्त आशय से भूतलक्षी रूप में प्रवर्तित होने वाली अभिव्यक्त विधि पारित करके अन्य सांविधानिक परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए प्राप्त किया जा सकता है। तथापि, संसद् या राज्य विधानमण्डल द्वारा किसी अध्यादेश का अननुमोदन मात्र पूर्ण या बंद संव्यवहारों को पुनरुज्जीवित नहीं कर सकता। चूंकि पदों की समाप्ति और यह घोषणा कि इन पदों के पदधारी अध्यादेश की धारा 3 के अधीन इन पदों के धारक नहीं रहेंगे, पूर्ण घटनाएं हो चुकी थीं, इसलिए उनके पुनरुज्जीवित होने या पिटीशनरों के इन पदों पर और अधिक समय तक बने रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। (पैरा 20 और 21)

1985(3) eILR(PAT) SC 1

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1985] (1985) 1 स्केल 31 :
के० नागराज और अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य; 15

[1982] [1982] 3 उम० नि० प० 310=[1982] 1 एस० सी० आर० 947 :
आर० के० गर्ग इत्यादि बनाम भारत संघ और अन्य; 13

[1982] (1982) 3 एस० सी० आर० 628 :
के० राजेन्द्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य; 5

[1982] (1982) 2 एस० सी० आर० 272, पृष्ठ 299 :
ए० के० राय इत्यादि बनाम भारत संघ और एक अन्य; 14

[1966] (1966) ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1571 :
बी० आर० शंकरनारायण और अन्य बनाम मैसूर राज्य और अन्य; 5

[1962] (1962) 2 सप० एस० सी० आर० 380 :
उड़ीसा राज्य बनाम भूपेन्द्र कुमार बोस; 19

[1961] (1961) 2 एस० सी० आर० 931 :
गंजुला दशरथ राम राव बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य; 3

[1949] (1949) एफ० सी० आर० वोल्यूम 11, पृष्ठ 693 :
लखी नारायण दास बनाम बिहार प्रान्त; 12

151 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1024 :
स्टीवेन्सल बनाम आलिवर : 19

**आरम्भिक अधिकारिता : 1984 की रिट पिटीशन सं० 629, 1546 इत्यादि :**

भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल की गई रिट ।

1985(3) eILR(PAT) SC 1



**पिटीशनरों की ओर से** — सर्वश्री सुब्रह्मण्य पोटी और टी० एस० कृष्णमूर्ति अय्यर, कुमारी मालिनी पोदुवाल, सर्वश्री बी० कान्त राव, सुबोध मार्कन्डे, श्रीमती शीला शेठी, सर्वश्री ए० के० गांगुली, ए० के० चक्रवर्ती, सी० एस० वैद्यनाथन, प्रबीर चौधरी, जी एन० राव, टी० सी० गुप्त और अत्तर सिंह

**प्रत्यर्थियों की ओर से** — सर्वश्री के० सुब्रह्मण्य रेड्डी, ई० मनोहर, टी० बी० एस० एन० चारी, कैलाश वासुदेव, सुदर्श मेनन और कुमारी वृन्दा ग्रोवर और श्री बी० पार्थसारथी

**भारत संघ की ओर से** — सर्वश्री डी० के० सेन, आर० पी० सिंह आर० एन० पोद्दार

**मध्यक्षेपी की ओर से** — श्री के० राम कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायाधिपति ई० एस० वैंकटरामय्या ने दिया।

**न्यायाधिपति वेंकटरामय्या—**

संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किए गए उपर्युक्त रिट पिटीशनों में, पिटीशनरों ने आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए तारीख 6 जनवरी, 1984 को प्रख्यापित आन्ध्र प्रदेश एबोलिशन ऑफ पोस्ट्स ऑफ पार्ट-टाइम विलेज आफिसर्स, आर्डिनेंस 1984 (आंध्र प्रदेश अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों का उत्सादन अध्यादेश, 1984) (1984 का अध्यादेश सं० 1) (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अध्यादेश" गया कहा है) की सांविधानिक विधिमान्यता पर आक्षेप किया है। अध्यादेश द्वारा आन्ध्र प्रदेश राज्य में अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पद समाप्त कर दिये गए थे और ग्राम सहायकों की नियुक्ति के लिए उपबंध किया गया था। कुछ पिटीशन जो, इस निर्णय द्वारा निपटा दिये गए, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय में इसी प्रकार के अनुतोषों के लिए फाइल किये गये थे। संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन फाइल किये गए पिटीशनों के साथ ही साथ उन पर

भी सुनवाई करने के लिए उन्हें अनुच्छेद 139-क के अधीन इस न्यायालय में मंगवा लिया गया ।

2. अध्यादेश की धारा 2(घ) में "अंशकालिक ग्राम अधिकारी" को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है जो मुखिया, मुन्सिफ, रेड्डी, मोनिगर, पट्कपू, पटेल, कारनाम, पटवारी या त्रयूने अधिकारी या स्थानीय रूप में पुकारे जाने वाले किसी भी पदाभिधान द्वारा ऐसा कोई ग्राम पद धारण करता है जिसमें (1) द आन्ध्र प्रदेश (आन्ध्र एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1969 (2) आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1978 या (3) किसी अन्य विधि के अधीन नियुक्त किये गये उनके सहायक भी सम्मिलित हैं। पिटीशनर अध्यादेश के प्रख्यापन की विधि के ठीक पूर्व इन पदों पर थे।

3. इस प्रक्रम पर पिटीशनरों द्वारा धारित पदों का संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक है। आन्ध्र प्रदेश राज्य का गठन राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के अधीन "आंध्र क्षेत्र" और "तेलंगाना क्षेत्र" नामक दो क्षेत्रों को मिलाकर किया गया था। उक्त दोनों क्षेत्रों में ग्राम प्रशासन को शासित करने वाली विभिन्न प्रकार की विधि प्रवर्तन में थीं। आन्ध्र क्षेत्र में ग्राम स्थापना में जो पहले मद्रास राज्य का भाग थी, मुखिया और कारनाम के रूप में ग्राम अधिकारी और तलयारी, वेत्ती और नीरगन्टी के रूप में ग्राम सेवक सम्मिलित थे। उनकी नियुक्ति और सेवा की शर्तें द मद्रास हेरेडिटरी विलेज आफिसेज ऐक्ट, 1895 (मद्रास ऐक्ट नं० III ऑव 1895) द्वारा शासित थीं। ये मूलतः आनुवंशिक पद थे। तारीख 6 दिसम्बर, 1960 को विनिश्चित **गजुला दशरथ राम राव** बनाम **आन्ध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि उक्त अधिनियम की धारा 6(1) जिसमें आनुवंशिक आधार पर ग्राम अधिकारियों और सेवकों की नियुक्ति उपबंधित है संविधान के अनुच्छेद 16(2) का उल्लंघन करती है और, इसलिए शून्य है। तेलंगाना क्षेत्र में, ग्राम स्थापना में पटवारी, माली पटेल और पुलिस पटेल के पदों के रूप में ग्राम अधिकारियों और शेटसिंधी और नीरदी के रूप में ग्राम सेवक के पद भी सम्मिलित थे। उनके कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व "दस्तूर-उल-अमल" हिजरी 1293 (फसली 1285) और "दस्तूर-ए-देहली" में अधिकथित थे। ये पद अपनी प्रकृति में आनुवंशिक भी थे। इन्हें वतन के रूप में भी पुकारा जाता था। इस न्यायालय के उपर्युक्त

[1] (1961) 2 एस० सी० आर० 931.

विनिश्चय के पश्चात्, आन्ध्र प्रदेश सरकार ने तारीख 16 जून, 1961 के जी० ओ० एम० एस० सं० 1042, रेवेन्यू (एच०) द्वारा के० एम० उन्नीथन, आई० सी० एस० की अध्यक्षता में, अन्य बातों के साथ-साथ समस्त आन्ध्र प्रदेश राज्य में ग्राम स्थापना के लिए एक स्कीम की प्रस्थापना करने के लिए ग्राम अधिकारी जांच समिति के नाम से पुकारी जाने वाली एक समिति नियुक्त की चूंकि राज्य का यह विचार था कि ग्राम स्तर पर कार्य कर रहे अंशकालिक अधिकारियों की वर्तमान प्रणाली लोक प्रशासन के हित में सहायक नहीं थी। उक्त समिति ने अपनी रिपोर्ट 1961 में प्रस्तुत की। वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि राज्य के दोनों क्षेत्रों में ग्राम अधिकारियों के कार्य की प्रकृति और मात्रा का सर्वांगीण रूप में सर्वेक्षण करने पर समस्त ग्राम अधिकारियों के लिए पर्याप्त कार्य नहीं है और यह कि अधिक कार्य की मात्रा के साथ अंशकालिक अधिकारियों की नियुक्ति द्वारा ग्राम स्थापना का पुनर्गठन आवश्यक है। समिति ने सिफारिश की कि कर्त्तव्यों के विलयन और उस क्षेत्र में वृद्धि करके, जिसमें कि ग्राम अधिकारी अधिकारिता का प्रयोग कर सकते थे, पदों की संख्या घटाने के लिए कदम उठाये जाने चाहिएं। कालांतर में, आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन नियम प्रख्यापित किये जो आन्ध्र प्रदेश (आन्ध्र एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1969 कहलाते हैं जिनके द्वारा तारीख 22 मई, 1969 से आन्ध्र प्रदेश राज्य के आंध्र क्षेत्र के ग्राम पदधारकों की भर्ती और सेवा की शर्तों के विनियमन के लिए उपबंध किया गया था। आन्ध्र प्रदेश विधानमण्डल ने आन्ध्र प्रदेश वतन (समाप्ति) अधिनियम, 1978 पारित किया जो राज्य के तेलंगाना क्षेत्र में शेठसिंधियों और नीरदियों के अलावा समस्त वतनों (ग्राम पदों के साथ-साथ उनसे संबंधित संपत्तियों सहित) को समाप्त करते हुए 8 दिसम्बर, 1977 से प्रवर्तन में आया। इसके साथ ही राज्यपाल ने तारीख 7 दिसम्बर, 1977 से तेलंगाना क्षेत्र में ग्राम अधिकारियों की भर्ती और सेवा की शर्तों के लिए उपबंध करते हुए आन्ध्र प्रदेश (तेलंगाना एरिया) विलेज आफिसेज सर्विस रूल्स, 1978 प्रख्यापित किये। तथापि, दोनों क्षेत्रों में ग्राम अधिकारी अब भी अंशकालिक अधिकारी थे। तब 6 जनवरी, 1984 को राज्य सरकार की सिफारिश पर राज्यपाल ने यह अध्यादेश प्रख्यापित किया जिसे इन कार्यवाहियों में आक्षेपित किया गया है।

4. अध्यादेश की धारा 3 में यह घोषित किया गया कि इसकी धारा 2(घ) में परिभाषित आन्ध्र प्रदेश राज्य में अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पद इस अध्यादेश के, जो तत्काल प्रवर्तित हो गया है, आरम्भ होने की तारीख

को और से समाप्त समझे जायेंगे और प्रत्येक व्यक्ति, जो आन्ध्र प्रदेश राज्य के किसी भाग में अंशकालिक ग्राम अधिकारियों का पद धारण किये हुये है, उस तारीख को और से ऐसे पद को धारण करना बंद कर देगा। उक्त उपबंध के कारण, अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पद 6 जनवरी, 1984 से अस्तित्व में नहीं रहे और उन पदों के पदधारी उस तारीख को और से सरकार के कर्मचारी नहीं रहे। अतः, पदों की समाप्ति का संव्यवहार तारीख 6 जनवरी, 1984 को पूर्ण तथ्य बना और उस घटना की बाबत करने को कुछ भी नहीं रहा। करने के लिए यदि कुछ शेष रहा तो वह संभवतया, यदि किसी रूप में था, उन लोगों को रकम का संदाय था जो एतद्द्वारा अध्यादेश की धारा 5 में उपबंधित रूप में सरकार के कर्मचारी नहीं रहे थे और अध्यादेश की धारा 4 में उपबंधित रूप में किसी एक या एक से अधिक राजस्व ग्रामों के लिए ग्राम सहायकों की भर्ती और अध्यादेश की धारा 6 द्वारा यथा उपबंधित रूप में उनकी सेवा की शर्तों से संबंधित नियमों की विरचना की। अध्यादेश के अवशिष्ट उपबंध पदों की समाप्ति और ग्राम सहायकों के नये पदों के भरे जाने के आनुषंगिक थे। तथापि, पदों की समाप्ति ग्राम सहायकों के नये पदों के भरे जाने पर निर्भर नहीं थी। वह दो स्वतंत्र संव्यवहार थे। अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों की समाप्ति अध्यादेश के प्रवर्तन के आने पर प्रभावी हुई। यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि उक्त अध्यादेश के स्थान पर अभी तक राज्य विधान-मंडल का कोई अधिनियम नहीं बना है। तथापि, इस अध्यादेश के बाद चार अध्यादेश अर्थात् 1984 का अध्यादेश सं० 7, 1984 का अध्यादेश सं० 13, 1984 का अध्यादेश सं० 18 और 1984 का अध्यादेश सं० 21 प्रख्यापित किए गए।

5. ये पिटीशन उन दो मामलों की कोटि में आते हैं जो पहले ही इस न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए जा चुके हैं। वे हैं **बी० आर० शंकरनारायण और अन्य** बनाम **मैसूर राज्य और अन्य**[1] वाला मामला, जिसमें मैसूर विलेज आफिसेज एबोलिशन ऐक्ट, 1961 (1961 का अधिनियम सं० 14) की सांविधानिकता को बहाल रखा गया था और दूसरा **के० राजेन्द्रन और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य और अन्य**[2] वाला मामला जिसमें तमिलनाडु एबोलिशन आफ पोस्ट्स आफ पार्ट-टाइम विलेज आफिसर्स आर्डिनेंस, 1980 (तमिलनाडु आर्डिनेंस सं० 10 आफ 1980 और तमिलनाडु एबोलिशन आफ पोस्ट्स आफ पार्ट-टाइम विलेज आफिसर्स ऐक्ट, 1980 (तमिलनाडु ऐक्ट सं० 3 आफ

---

[1] ए० आई० आर० 1966 एस० सी० 1571.

[2] (1982) 3 एस० सी० आर० 628.

1985(3) eILR(PAT) SC 1



1981) की विधिमान्यता को बहाल रखा गया था। इस प्रकार पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने बहुत साफ-साफ और हमारे विचार में ठीक ही अनेक दलीलों पर जोर नहीं दिया जिन्हें इस न्यायालय ने उक्त विनिश्चयों में अस्वीकार कर दिया था। तथापि, उन्होंने हमारे समक्ष पिटीशनों के समर्थन में निम्न दलीलों पर जोर दिया :—

(i) यह कि अध्यादेश राज्यपाल द्वारा अध्यादेश की विषय-वस्तु पर अपने मस्तिष्क का प्रयोग न करने के कारण शून्य और अप्रभावी है।

(ii) यह कि अध्यादेश के समाप्त हो जाने से चूंकि विधानमंडल ने उसके स्थान पर कोई अधिनियम पारित नहीं किया, वे पद जो समाप्त कर दिये गए थे, पुन: प्रवर्तित समझे जाने चाहिए और पश्चात्वर्ती द्वारा पूर्ववर्ती को प्रतिस्थापित करते हुए उत्तरवर्ती अध्यादेशों को जारी किए जाने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा; और

(iii) यह कि पदों की समाप्ति और उक्त पदों को धारण करने के अधिकारों से पिटीशनर को पारिणामिक रूप से वंचित किया जाना संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारण्टीकृत उनके प्राण और दैहिक स्वाधीनता के मूल अधिकारों के अतिलंघन की कोटि में आयेगा।

6. पिटीशनरों की उपर्युक्त दलीलों पर विचार करने से पूर्व अध्यादेश जारी करके कार्यपालिका की विधि बनाने की शक्ति से संबंधित संविधान के उपबंधों को निर्दिष्ट करना उपयुक्त होगा। प्रस्तुत मामलों में राज्यपाल ने संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन प्रदत्त विधायी शक्ति का प्रयोग करते हुए अध्यादेश जारी किया। अनुच्छेद 213 इस प्रकार पढ़ा जा सकता है :—

"213 (1) उस समय को छोड़कर जब किसी राज्य की विधान सभा सत्र में है या विधान परिषद् वाले राज्य के विधानमंडल के दोनों सदन सत्र में हैं, यदि किसी समय राज्यपाल का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरन्त कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों :

परन्तु राज्यपाल, राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना, कोई ऐसा अध्यादेश प्रख्यापित नहीं करेगा यदि—

(क) वैसे ही उपबंध अन्तर्विष्ट करने वाले विधेयक को विधानमंडल में पुरःस्थापित किये जाने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की अपेक्षा होती; या

(ख) वह वैसे ही उपबंध अंतर्विष्ट करने वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखना आवश्यक समझता है; या

(ग) वैसे ही उपबंध अंतर्विष्ट करने वाला राज्य के विधानमंडल का अधिनियम इस संविधान के अधीन तब तक अविधिमान्य होता जब तक राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखे जाने पर उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त नहीं हो गई होती।

(2) इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो राज्य के विधान मंडल के ऐसे अधिनियम का होता है जिसे राज्यपाल ने अनुमति दे दी है, किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश—

(क) राज्य की विधान सभा के समक्ष और विधान परिषद् वाले राज्य में दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा तथा विधान मंडल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले विधान सभा उसके अननुमोदन का संकल्प पारित कर देती है और यदि विधान-परिषद् है तो वह उससे सहमत हो जाती है तो, यथास्थिति, संकल्प पारित होने पर या विधान परिषद् द्वारा संकल्प से सहमत होने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा;

(ख) राज्यपाल द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकेगा।

**स्पष्टीकरण**—जहां विधान परिषद् वाले राज्य के विधानमंडल के सदन भिन्न-भिन्न तारीखों में पुनः समवेत होने के लिए आहूत किए जाते हैं वहां इस खण्ड के प्रयोजनों के लिए, छह सप्ताह की अवधि की गणना उन तारीखों में से पश्चात्वर्ती तारीख से की जाएगी।

(3) यदि और जहां तक इस अनुच्छेद के अधीन अध्यादेश कोई ऐसा उपबंध करता है जो राज्य के विधानमंडल के ऐसे अधिनियम में

जिसे राज्यपाल ने अनुमति दे दी है, अधिनियमित किए जाने पर विधिमान्य नहीं होता तो वहां तक वह अध्यादेश शून्य होगा :

परन्तु राज्य के विधानमंडल के ऐसे अधिनियम के, जो समवर्ती सूची में प्रगणित किसी विषय के बारे में संसद् के किसी अधिनियम या किसी विद्यमान विधि के विरुद्ध है, प्रभाव से संबंधित इस संविधान के उपबंधों के प्रयोजनों के लिए कोई अध्यादेश, जो राष्ट्रपति के अनुदेशों के अनुसरण में इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित किया जाता है, राज्य के विधानमण्डल का ऐसा अधिनियम समझा जाएगा जो राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया था और जिसे उसने अनुमति दे दी है।"

7. संविधान का अनुच्छेद 213 अनुच्छेद 123 के अनुरूप है जो राष्ट्रपति को उन मामलों के संबंध में वैसी ही शक्तियां प्रदान करता है जिन पर संसद् विधि बना सकती है। अनुच्छेद 123 निम्न प्रकार पढ़ा जा सकता है :—

"123 (1) उस समय को छोड़कर जब संसद् के दोनों सदन सत्र में हैं, यदि किसी समय राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरन्त कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों।

(2) इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो संसद् के अधिनियम का होता है, किंतु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश—

(क) संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा और संसद् के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले दोनों सदन उसके अननुमोदन का संकल्प पारित कर देते हैं तो, इनमें से दूसरे संकल्प के पारित होने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा; और

(ख) राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापिस लिया जा सकेगा।

**स्पष्टीकरण**—जहां संसद् के सदन भिन्न-भिन्न तारीखों में पुनः समवेत होने के लिए आहूत किये जाते हैं वहां इस खंड के प्रयोजनों

के लिए, छह सप्ताह की अवधि की गणना उन तारीखों में से पश्चात्वर्ती तारीख से की जाएगी।

(3) यदि और जहां तक इस अनुच्छेद के अधीन अध्यादेश कोई ऐसा उपबंध करता है जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद् इस संविधान के अधीन सक्षम नहीं है तो वहां तक वह अध्यादेश शून्य होगा।"

8. उपर्युक्त दोनों अनुच्छेदों में जो थोड़ी-सी भिन्नता है, वह कतिपय विधायी मामलों पर राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता के कारण है। चाहे वे विधानमण्डल की विधायी क्षमता के अन्तर्गत क्यों न हों, इससे इन पिटीशनों में विचारार्थ मुद्दों की बाबत कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि वे संविधान के अनुच्छेद 123 और 213 में सामान्य हैं।

9. आरम्भ में ही पिटीशनरों के विद्वान् काउन्सेल ने कार्यपालिका की विधि बनाने की शक्ति के सांविधानिक औचित्य पर आक्षेप किया जिसका लोकतांत्रिक समाज में जनता के अधिकारों पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा, जहां जनता के प्रतिनिधियों को साधारणतया ऐसे विधि बनाने का कर्तव्य सौंपा जाना चाहिए। यह सही है कि हमारे संविधान में सरकार के तीनों अंगों, अर्थात् विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत अपनाया गया है, इसने संविधान के अनुच्छेद 123 और अनुच्छेद 213 अधिनियमित करके कतिपय शर्तों के अध्यधीन कार्यपालिका को विधायी शक्ति प्रदान की है। उसने विधि बनाने की प्रक्रिया में राष्ट्रपति और राज्यपाल को भी सहयुक्त किया है चाहे संसद् या राज्य विधानमण्डल, यथास्थिति, उन्हें अधिनियमित करें। संविधान के अनुच्छेद 79 में यह उपबन्धित है कि संघ के लिए एक संसद् होगी जो राष्ट्रपति और दो सदनों से मिलकर बनेगी जिनके नाम राज्यों की कौंसिल (राज्य सभा) और जनता का सदन (लोक सभा) होंगे। संविधान के अनुच्छेद 111 के अधीन किसी विधेयक के विधि बनने के लिए संसद् के दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक है। उसी प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 168 के अधीन यह उपबंधित है कि राज्य विधानमण्डल राज्यपाल और किसी राज्य की विधान सभा से मिलकर बनेगा और जहां विधान परिषद् हो, तो विधानमण्डल राज्यपाल और दोनों सदनों से मिलकर बनेगा। राज्य विधानमण्डल द्वारा पारित किसी विधेयक के विधि बनने से पूर्व जब उसे राज्यपाल या राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखा जाए, तो संविधान के अनुच्छेद 200 के अधीन उनकी अनुमति

आवश्यक है। तथापि, संविधान के अनुच्छेद 123 के अधीन राष्ट्रपति को और 213 के अधीन राज्यपाल को प्रदत्त शक्तियां विधायी शक्तियां हैं जिनका प्रयोग सम्बन्धित विधानमण्डल के पूर्व अनुमोदन के बिना किया जा सकता है।

10. भारत शासन अधिनियम, 1915 (गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट, 1915) की धारा 72 के अधीन गवर्नर-जनरल को भारत में अध्यादेश बनाने की शक्ति प्रदान की गई थी, जो निम्न प्रकार है :—

> *"**72. आपात स्थिति में अध्यादेश बनाने की शक्ति**—गवर्नर-जनरल आपात स्थिति में ब्रिटिश भारत या उसके किसी भाग की शांति और सुशासन के लिए अध्यादेश बना और प्रख्यापित कर सकता है, और इस प्रकार बनाया गया कोई अध्यादेश, अपनी प्रख्यापना से छह माह से अधिक अवधि तक विधि का वैसा ही बल रखेगा जैसा कि भारतीय विधानमण्डल द्वारा पारित कोई अधिनियम, किन्तु इस धारा के अधीन अध्यादेश बनाने की शक्ति वैसे ही निर्बन्धनों के अध्यधीन है जिस प्रकार कि विधि बनाने की भारतीय विधानमण्डल की शक्ति, और इस धारा के अधीन बनाया गया कोई अध्यादेश वैसी ही नामंजूरी के अध्यधीन है जिस प्रकार कि भारतीय विधानमण्डल द्वारा पारित कोई अधिनियम और ऐसे किसी अधिनियम द्वारा नियन्त्रित या अतिष्ठित किया जा सकेगा।"

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

> "**72 Power to make ordinances in case of emergency**—The Governor-General may, in cases of emergency, make and promulgate ordinances for the peace and good government of British India or any part thereof, and any ordinace so made shall, for the space of not more than six months from its promulgation, have the like force of law as an Act passed by the Indian Legislature but the power of making ordinances under this section is subject to the like restrictions as the power of the Indian Legislature to make law; and any ordinance made under this section is subject to the like disallowance as an Act passed by the Indian Legislature and may be controlled or supereded by such Act."

11. प्रकट है कि उपर्युक्त उपबन्ध में यह कथित है कि इसके अधीन बनाया गया कोई अध्यादेश भारतीय विधानमण्डल द्वारा पारित अधिनियम जैसा ही विधि का बल रखता हैं किन्तु उसके अधीन अध्यादेश बनाने की शक्ति वैसे ही निर्बन्धनों के अध्यधीन है जैसी कि भारतीय विधानमण्डल की विधि बनाने की शक्ति होती है और इस धारा के अधीन बनाया गया कोई अध्यादेश प्रख्यापना की तारीख से छह माह से अधिक अवधि तक प्रवर्तन में नहीं रहेगा जब तक कि उसे विधानमण्डल के किसी अधिनियम द्वारा उससे पहले अंगीकृत या अतिष्ठित नहीं कर दिया जाता। भारत शासन अधिनियम, 1935 के भाग 2 के अध्याय 4 में गवर्नर जनरल को प्राप्त तीन प्रकार की विधायी शक्तियों को मान्यता दी गई है। उस अधिनियम की धारा 42 द्वारा गवर्नर जनरल को विधानमण्डल के विश्रांतिकाल के दौरान अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान की गई है। उस अधिनियम की धारा 43 द्वारा उसे कतिपय विषयों की बाबत किसी भी समय अध्यादेश प्रख्यापित करने की शक्ति प्रदान की गई है और धारा 44 उसे कतिपय परिस्थितियों में अधिनियम अधिनियमित करने की शक्ति प्रदान करती है। भारत शासन अधिनियम, 1935 के भाग 5 के अध्याय 4 द्वारा, जिसमें धाराएं 88, 89 और 90 अन्तर्विष्ट हैं, प्रान्तों के राज्यपालों को वैसी ही विधायी शक्तियां प्रदान की गई थीं। संविधान के अनुच्छेद 123 और 213 भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 42 और 88 की पद्धति पर अधिनियमित की गई थीं। भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 42 का सुसंगत भाग तत्काल निर्देश के लिए नीचे दिया जाता है। इसे इस प्रकार पढ़ा जा सकता है :—

*"42. विधानमण्डल के विश्रांतिकाल में अध्यादेश प्रख्यापित करने की गवर्नर जनरल की शक्ति—

(1) यदि ऐसे किसी समय जब परिसंघीय विधानमण्डल सत्र में नहीं है गवर्नर जनरल का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरन्त कार्रवाई करना उनके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"42. Power of Governor-General to promulgate ordinances during recess of legislature.—

(1) If at any time when the Federal Legislature is not in session the Governor-General is satisfied that circumstances exist which render it necessary for him to take immediate action, he may

1985(3) eILR(PAT) SC 1

प्रख्यापित कर सकेगा जो उन्हें उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हो······

(2) इस धारा के अधीन प्रख्यापित कोई अध्यादेश वैसा ही बल और प्रभाव रखेगा जैसा कि गवर्नर जनरल द्वारा अनुमत परिसंघीय विधानमण्डल का कोई अधिनियम, किन्तु ऐसा प्रत्येक अध्यादेश—

(क) परिसंघीय विधानमण्डल के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा और विधानमण्डल के पुन: समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या, यदि उस अवधि की समाप्ति से पूर्व दोनों सदन उसके अननुमोदन का संकल्प पारित कर देते हैं तो उन संकल्पों में से दूसरे संकल्प के पारित होने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा, और

(ख) इस अधिनियम के उन उपबन्धों के, जो गवर्नर जनरल की अधिनियम नामंजूर करने की शक्ति से सम्बन्धित हैं अध्यधीन होगा मानो वह गवर्नर जनरल की अनुमत परिसंघीय विधानमण्डल का अधिनियम हो; और

---

promulgate such ordinances as the circmstances appear to him to require :·········

(2) An ordinances promulgate under this section shall have the same force and effect as an act of the Federal Legislature assented to by the Governor-General, but every such ordinance—

(a) shall be laid before the Federal Legislature and shall cease to operate at the expiration of six weeks from there assembly of the Legislature, or, if before the expiration of that period resolutions disaproving it are passed by both chambers upon the passing of the second of those resolutions;

(b) shall be subject to the provisions of this of this Act relating to the power of His Majesty to disallow Acts as if it were an Act of the Federal Legislature assented to by the Governor-Generali and

1985(3) eILR(PAT) SC 1


(ग) गवर्नर जनरल द्वारा किसी समय वापस लिया जा सकेगा।

(3) यदि जहां तक इस धारा के अधीन कोई अध्यादेश ऐसा कोई उपबन्ध करता है जिसे परिसंघीय विधान मण्डल इस अधिनियम के अधीन अधिनियमित करने के लिए सक्षम नहीं होगा तो वह शून्य होगा।"

12. भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 88 पर, जो लगभग ऐसे ही शब्दों में थी और जो किसी प्रान्त के राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान करती थी, भारत के फेडरल न्यायालय द्वारा **लखी नारायण दास** बनाम **बिहार प्रान्त**[1] वाले मामले में विचार किया गया था। फेडरल न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए न्यायाधिपति मुखर्जी ने पृ० 699-750 पर निम्न मत व्यक्त किया था :—

"यह स्वीकार किया गया है कि जिस समय यह अध्यादेश पारित किया गया था उस समय बिहार विधानमण्डल सत्र में नहीं था। तथापि, निचले न्यायालय में यह निवेदन किया गया, और हमारे समक्ष यह तर्क दोहराया गया कि धारा 88(1) द्वारा अनुध्यात रूप में कोई परिस्थिति विद्यमान नहीं थी जो राज्यपाल को इस अध्यादेश को प्रख्यापित करने के लिए न्यायोचित ठहराती। यह स्पष्टतया ऐसा मामला है जिसका अन्वेषण करने के लिए न्यायालय सक्षम नहीं है। धारा की भाषा स्पष्टतया यह दर्शित करती है कि उन परिस्थितियों के विद्यमान होने की बाबत एकमात्र राज्यपाल का ही समाधान होना है जिनके कारण कोई अध्यादेश प्रख्यापित करना आवश्यक हुआ है। ऐसी आवश्यकता का विद्यमान होना न्यायालय की विचार परिधि के अन्तर्गत नहीं आता जिसे न्यायालयों द्वारा वस्तुनिष्ठ

---

(c) may be withdrawn at any time by the Governor-General.

(3) If and so far as an ordinance under this section make any provision which the Federal Legislature would not under this Act be competent to enact, it shall be vaid."

---

[1] (1949) एफ० सी० आर० जिल्द, 11 पृ० 693.

1985(3) eILR(PAT) SC 1


परीक्षण अपनाकर अवधारित किया जा सके। यहां यह उल्लेखनीय है कि भारत शासन अधिनियम के अधीन गवर्नर जनरल आपात स्थिति में अध्यादेश बनाने की शक्ति रखता है (देखिए गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट की धारा 42 और अनुसूची 9 की धारा 72 जिसका अब लोप कर दिया गया है); और प्रिवी कौंसिल द्वारा किंग एम्परर **बनाम** बनवारी लाल [(1945) 72 आई० ए० 57] और भगत सिंह **बनाम** किंग एम्परर [(1931) 58 आई० ए० 169] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसी आपात स्थिति का निर्णय जिसमें तत्काल कार्रवाई आवश्यक है, केवल गवर्नर जनरल द्वारा ही किया जाना चाहिए। कोई अध्यादेश प्रख्यापित करने पर, गवर्नर जनरल विधितः उसके कारण प्रतिपादित करने के लिए आबद्ध नहीं है, न ही न्यायालय में निश्चित रूप ने यह साबित करने के लिए आबद्ध है कि आपात स्थिति वास्तव में विद्यमान थी। धारा 88 की भाषा का आधार तत्व केवल एक यह शर्त है अर्थात्, न्यायोचित ठहराने वाली परिस्थितियों के विद्यमान होने की बाबत राज्यपाल का समाधान और अध्यादेश की उद्देशिका में स्पष्ट शब्दों में यह अभिव्यक्त है कि यह शर्त पूरी कर दी गई है। अतः अपीलार्थियो की प्रथम दलील अस्वीकार की जानी चाहिए।"

13. संविधान के अनुच्छेद 123 के अधीन, राष्ट्रपति किसी स्थिति की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए मंत्रि-परिषद् की सिफारिश पर उस समय कोई अध्यादेश प्रख्यापित कर सकता है जब संसद् के दोनों सदनों में से कोई भी सत्र में न हो। इसी प्रकार, संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन राज्यपाल अपनी मंत्रि-परिषद् की सलाह पर उस समय कोई अध्यादेश जारी कर सकता है जब विधान सभा या जहां किसी राज्य में विधानमंडल के दो सदन हैं, उनमें से कोई भी सत्र में नहीं है। चूंकि संविधान का अनुच्छेद 85 संसद् के प्रत्येक सदन के मामले में उसके एक सत्र की अन्तिम बैठक और आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख के बीच छह मास की अवधि का अन्तर होने देना अनुज्ञात नहीं करता और चूंकि संविधान के अनुच्छेद 123 के खंड (2) के अनुसार अध्यादेश संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा और संसद् के पुनः समवेत होने से छह मास की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा, यह नहीं कहा जा सकता कि किसी अध्यादेश के पारित होने के पश्चात् साढ़े सात मास से अधिक समय तक राष्ट्रपति किसी भी सदन को टाल सकता है। संसद् को इसका अनुमोदन करने या न करने की छूट प्राप्त है। भारत में विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने यह सोचा

1985(3) eILR(PAT) SC 1


कि अदृश्य और आवश्यक परिस्थितियों से निपटने के लिए अध्यादेश बनाने की शक्ति राष्ट्रपति को दी जानी चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 213 के अधीन भी वैसी ही स्थिति है। इस आलोचना पर विचार करते हुए कि अनुच्छेद 123 अलोकतांत्रिक उपबंध है, न्यायाधिपति भगवती ने **आर० के० गर्ग इत्यादि** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के बहुमत की ओर से निर्णय सुनाते हुए पृ० 965-966 पर निम्न मत व्यक्त किया था :—

> "अब पहली झलक में तो यह बात असाधारण दिखाई दे सकती है और इस मुद्दे पर श्री आर० के० गर्ग की यही मुख्य आलोचना थी कि संविधान निर्माताओं ने विधि बनाने की शक्ति कार्यपालिका को सौंपी हो क्योंकि लोकतांत्रिक राजनीतिक ढांचे के पारस्परिक परिधान के अनुसार विधायी शक्ति अनन्य रूप से जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को मिलनी चाहिए और इसे कार्यपालिका में निहित करना, यद्यपि वह विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है, अलोकतांत्रिक होगा, क्योंकि वह विधानमंडल में बहस की जोखिम उठाए बिना कोई साधारण विधेयक पारित कराकर इस शक्ति का दुरुपयोग कर सकती है। किन्तु यदि हम इस उपबंध का सूक्ष्म विश्लेषण करें और इसके सभी पहलुओं पर विचार करें तो यह इतना विस्मयकारी दिखाई नहीं देता, यद्यपि हम यह बता दें कि यदि ऐसा हो तो भी न्यायालय को संविधान-निर्माताओं की सामूहिक इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में इसे स्वीकार करना होगा। यह बात ध्यान देने योग्य है और डा० अम्बेडकर ने संविधान सभा में अनुच्छेद 123 के पुरःस्थापन के विरुद्ध आलोचना का उत्तर देते समय यह बात जोरदार शब्दों में बतलाई थी कि इस अनुच्छेद के अधीन राष्ट्रपति को प्रदत्त विधायी शक्ति विधानमंडल की समानान्तर शक्ति नहीं है। यह ऐसी शक्ति है जिसका प्रयोग केवल उस समय किया जा सकता है जबकि संसद् के दोनों सदन सत्र में नहीं हैं और आवश्यकता की दृष्टि से इसे आपातकालीन स्थितियों से निपटने में कार्यपालिका को सक्षम बनाने हेतु प्रदत्त किया गया है। इस पर भी राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करके बनाई गई विधि बिल्कुल सीमित कालावधि के लिए होती है। यह संसद् के पुनः समवेत होने के छह सप्ताह की समाप्ति पर प्रवृत्त नहीं रहती या इस कालावधि की समाप्ति से पूर्व दोनों सदनों द्वारा

---

[1] (1982) 3 उम० नि प० 310=[1982] 1 एस० सी० आर० 947.

उसे अननुमोदन करने वाला संकल्प पारित कर दिया जाता है तो उन संकल्पों में से दूसरे संकल्प के पारित होने पर प्रवर्तन में नहीं रहती। यह भी इस बात का स्पष्ट संकेत देती है कि राष्ट्रपति को इस विधायी शक्ति से आपातकालीन स्थितियों पर विजय पाने के लिए कार्यपालिका को सक्षम बनाने हेतु ही सशक्त किया गया है जो उस समय उद्भूत हो सकती है जबकि संसद् के सदन सत्र में न हों। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रपति को प्रदत्त अध्यादेश प्रख्यापित करने की यह शक्ति संसद् की विधि बनाने की शक्ति के सम-विस्तीर्ण है और राष्ट्रपति ऐसा अध्यादेश जारी नहीं कर सकता जिसे संसद् विधि के रूप में अधिनियमित न कर सके। अतः, इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि संविधान निर्माताओं ने कार्यपालिका को आवश्यक प्रयोजनार्थ विधायी शक्ति प्रदान की है और यह परिसीमाओं और शर्तों द्वारा रक्षित है। ऐसी शक्ति का प्रदान किया जाना अप्रजातांत्रिक भले ही प्रतीत हो किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, क्योंकि कार्यपालिका स्पष्टतया विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी है और यदि राष्ट्रपति, कार्यपालिका की सहायता और सलाह पर, इस शक्ति का गलत प्रयोग या दुरुपयोग करके अध्यादेश प्रख्यापित करता है, तो विधानमंडल न केवल अध्यादेश का अननुमोदन करने वाला संकल्प ही पारित करेगा अपितु कार्यपालिका में अविश्वास का प्रस्ताव भी पारित कर सकती है। सांविधानिक विधि के सिद्धांत में कार्यपालिका पर विधानमंडल का पूर्ण नियंत्रण है क्योंकि यदि कार्यपालिका अनुचित व्यवहार करती है या विधानमंडल का विश्वास खो देती है, तो इसे विधानमंडल द्वारा हटाया जा सकता है। वस्तुतः कार्यपालिका द्वारा शक्ति के इस दुरुपयोग या गलत प्रयोग के विरुद्ध यह रक्षोपाय प्रभावकारिता और मूल्य में उसी के अनुसार कम हो जाएगा मानो कार्यपालिका पर विधायी नियंत्रण समाप्त हो जाए और कार्यपालिका विधानमंडल पर आधिपत्य रखना शुरू कर दे। किन्तु इस पर भी यह एक ऐसा रक्षोपाय है जो राष्ट्रपति में विधायी शक्ति निहित किए जाने को अलोकतांत्रिक उपबंध होने के आरोप से बचाता है।

14. उपर्युक्त मत का इस न्यायालय की एक अन्य सांविधानिक न्यायपीठ द्वारा **ए० के० राय इत्यादि** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1]

[1] (1982) 2 एस० सी० आर० 272 पृ० 299.

वाले मामले में अनुमोदन किया गया। इन दोनों विनिश्चयों ने यह दृढ़तापूर्वक स्थापित कर दिया है कि अध्यादेश 'विधि' होता है और उसी आधार पर उसे समझा जाना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 123 के खण्ड (2) और अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) की भाषा संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोड़ती। इन दोनों अनुच्छेदों में से किसी के अधीन पुरःस्थापित किए गए अध्यादेश का यथास्थिति ससद् या राज्य विधानमडल के किसी अधिनियम जैसा ही बल और प्रभाव होगा। जब एक बार उपर्युक्त निष्कर्ष दे दिया जाए तो अगला विचारणीय प्रश्न यह होगा कि क्या मस्तिष्क का प्रयोग न करने या असद्भावपूर्वक कार्य करने के आधार पर किसी अध्यादेश को अभिखण्डित करना अनुज्ञेय है या यह कि विद्यमान परिस्थितियों में अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता नहीं थी। दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह है कि क्या किसी अध्यादेश की विधिमान्यता का ऐसे आधारों पर परीक्षण किया जा सकता है जो उसी प्रकार के हैं जिन पर किसी कार्यपालिक या न्यायिक कार्रवाई का परीक्षण किया जाता है। हमारे संविधान के अनुसार विधायी कार्रवाई केवल संविधान द्वारा विहित परिसीमाओं के ही अध्यधीन है, किसी अन्य के नहीं। कोई विधि, जो ऐसे विधानमंडल द्वारा बनाई गई है, जो उसे पारित करने के लिए सक्षम नहीं है, और जो संविधान के भाग 3 के उपबधो या किसी अन्य सांविधानिक उपबंध का उल्लंघन करती है, अप्रभावी होगी। सांविधानिक विधि का यह निश्चित नियम है कि यह प्रश्न कि कोई कानून सांविधानिक है या नहीं, संबंधित विधानमंडल की शक्ति से संबंधित प्रश्न है, और कानून की विषय-वस्तु पर निर्भर करता है और किस रूप में यह पूरा किया जाता है तथा इसे अधिनियमित करने के तरीके पर निर्भर करता है, जबकि न्यायालय किसी कानून को उस समय असंविधानिक घोषित कर सकते हैं जब वह सांविधानिक परिसीमाओं का अतिक्रमण करता है, किन्तु वे विधायी शक्ति के प्रयोग के औचित्य की जांच करने से प्रवारित हैं। यह उपधारणा करनी पड़ती है कि विधायी विवेक का उचित रूप से प्रयोग किया गया है। कानून पारित करने में विधानमंडल का हेतु क्या था, यह न्यायालयों की संवीक्षा से बाहर है। न ही न्यायालय इसकी परीक्षा कर सकते हैं कि क्या विधानमंडल ने उसे पारित करने से पूर्व किसी कानून के उपबंधों के प्रति अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया था अथवा नहीं। किसी विधायी कार्यवाही का औचित्य, समीचीनता और आवश्यकता विधायी प्राधिकार की अवधारणा के लिए है, न कि न्यायालयों द्वारा अवधारित किए जाने के लिए। संविधान के अनुच्छेद 123 या 213 के अधीन पारित अध्यादेश भी उसी प्रकार का होता है। जब संविधान यह कहता है

कि अध्यादेश बनाने की शक्ति विधायी शक्ति है और अध्यादेश का वही बल होगा जो अधिनियम का होता है तो अध्यादेश में संविधान के अन्तर्गत उसकी समस्त घटनाओं, उन्मुक्तियों और परिसीमाओं को रखते हुए विधानमंडल के किसी अधिनियम की समस्त विशेषताएं होनी चाहिए। इसे कार्यपालिक कार्रवाई या प्रशासनिक विनिश्चय नहीं माना जा सकता।

15. अध्यादेश के संबंध में, इन विवाद्यकों की न्याय्यता विषयक वास्तविक विधिक स्थिति क्या है, इसका उल्लेख **के० नागराज और अन्य बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में पृष्ठ 50 पर हमारे एक सहयोगी (मुख्य न्यायाधिपति चन्द्रचूड़) ने इस प्रकार व्यक्त की है :—

> "इस निवेदन को स्वीकार करना असंभव है कि अध्यादेश को मस्तिष्क का प्रयोग न किये जाने के आधार पर अविधिमान्य घोषित किया जा सकता है। अध्यादेश जारी करने की शक्ति कार्यपालिक शक्ति ही नहीं है अपितु यह विधान बनाने की कार्यपालिका की शक्ति है। अध्यादेश प्रख्यापित करने के बारे में राज्यपाल की शक्ति अनुच्छेद 213 में अन्तर्विष्ट है जो संविधान के भाग 6 के अध्याय 4 में आता है। इस अध्याय का शीर्षक "राज्यपाल की विधायी शक्ति" है। यह शक्ति भी राज्य विधानमंडल की विधि पारित करने की शक्ति के समान ही अपने क्षेत्र में पूर्ण है और इस शक्ति पर उनके अलावा कोई परिसीमा नहीं है जिनके अध्यधीन राज्य की विधानमंडल की विधायी शक्ति होती है। अतः, यद्यपि किसी अध्यादेश को उन सांविधानिक परिसीमाओं का उल्लंघन करने के लिए अविधिमान्य घोषित किया जा सकता है, जो राज्य विधानमंडल की विधि पारित करने की शक्ति पर आधारित है, तो भी इसे मस्तिष्क का प्रयोग न करने के कारण उस रूप में अविधिमान्य घोषित नहीं किया जा सकता जिस प्रकार कि कोई अन्य विधि अविधिमान्य घोषित की जा सकती है। कोई कार्यपालिक कार्यवाही मस्तिष्क का प्रयोग न किए जाने के आधार पर अभिखंडित की जा सकती है, किन्तु विधानमंडल की कार्यवाही नहीं।

अध्यादेश बनाने की शक्ति की विधायी प्रकृति के प्रश्न पर हम ए० के० राय **बनाम** भारत संघ और आर० के० गर्ग **बनाम भारत**

---

[1] (1985) 1 स्केल 31.

संघ वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति निर्देश कर सकते हैं।"

16. अध्यादेश का कहना है कि यह राज्य सरकार द्वारा किये गये नीति-विषयक विनिश्चय के आधार पर प्रख्यापित किया गया था। अध्यादेश का सुसंगत भाग इस प्रकार है :—

*"राज्य सरकार की यह राय है कि अंशकालिक ग्राम अधिकारियों की प्रणाली पुरानी हो गई है और ग्राम प्रशासन की आधुनिक आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं बैठती;

और राज्य सरकार ने ध्यानपूर्वक विचार करने के पश्चात्, प्रशासनिक आवश्यकता के आधारों पर और पूर्णकालिक अधिकारियों को ग्राम प्रशासन का भारसाधक बनाये जाने की प्रणाली आरंभ करने के लिए अशंकालिक ग्राम अधिकारियों के समस्त पदों को समाप्त करने का नीतिविषयक विनिश्चय कर लिया है;

और राज्य का विधानमंडल सत्र में नहीं है तथा आन्ध्र प्रदेश के राज्यपाल का यह समाधान हो गया है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण उसके लिए तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक हो गया है;

अतः, अब, भारत के संविधान के अनुच्छेद 213 के खण्ड (1)

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है :—

"Whereas the State Government are of the opinion that the system of part-time village officers is out-moded and does not fit in with the modern needs of village administration;

And whereas the State Government have after careful consideration, taken a policy decision to abolish all the posts of part-time village officers on ground of administrative necessity and to introduce a system of wholetime officers to be in charge of village administration;

And whereas the Legislature of the State is not in session and the Governor of Andhra Pradesh is satisfied that circumstances exist which render it necessary for him to take immediate action;

Now, therefore, in exercise of the powers conferred

द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, राज्यपाल एतद्द्वारा निम्न अध्यादेश प्रख्यापित करते हैं।"

17. आगे दिखाई देगा कि राज्य सरकार ने तारीख 24 फरवरी, 1984 को राज्य की विधान सभा में अध्यादेश की तारीख से लगभग सात सप्ताह के भीतर अध्यादेश को अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित करने के लिए 1984 का विधेयक एल० ए० सं० 3 पुरःस्थापित किया था। उक्त विधेयक संयुक्त प्रवर समिति को निर्देशित किया गया था और उक्त विधेयक 7 जून, 1984 तक पारित नहीं हुआ था। किसी ऐसी कार्रवाई के प्रयोजनार्थ अध्यादेश के प्रभाव को बनाए रखने के लिए, जो अभी इसके अधीन की जानी थी, राज्यपाल ने मंत्रि परिषद् की सलाह पर 1984 का अध्यादेश सं० 7 तारीख 21 मार्च, 1984 के रूप में एक अन्य अध्यादेश पुनः जारी किया। इसके पश्चात् 1984 का अध्यादेश सं० 13 तारीख 27 अप्रैल, 1984, 1984 का अध्यादेश सं० 18 तारीख 7 जून, 1984 और 1984 का आदेश सं० 21 तारीख 19 जुलाई, 1984 जारी किये गये। अध्यादेश की धारा 11(1) को प्रभावी बनाने के लिए, राज्य सरकार ने आन्ध्र प्रदेश एबोलिशन आफ पार्ट-टाइम विलेज आफिसर्स (फिक्शेसन आफ एमाउन्ट पेयबल फार टोटल सर्विस) रूल्स, 1984 तारीख 24 फरवरी, 1984 को और उपर्युक्त नियमों का शुद्धिपत्र 27 मार्च, 1984 को प्रख्यापित किया।

18. अतः, मामले की परिस्थितियों में हमें पिटीशनरों की ओर से निवेदित प्रथम दलील में कोई सार दिखाई नहीं पड़ता।

19. अगला प्रश्न यह है कि क्या अंशकालिक अधिकारियों के पद पुनरुज्जीवित हो गये हैं क्योंकि अध्यादेश के स्थान पर राज्य के विधानमंडल का कोई अधिनियम पारित नहीं किया गया। पिटीशनरों की यह दलील संविधान के अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) पर आधारित है। उनकी ओर से यह तर्क दिया गया कि अध्यादेश के शब्दों के अनुसार, राज्य विधानमण्डल द्वारा कोई अधिनियम पारित करने में असफल रहने पर यह धारणा की जानी चाहिए कि अध्यादेश कभी भी प्रभावी नहीं बना और यह कि यह आरंभ से ही शून्य था। यह दलील दो महत्त्वपूर्ण बातों, अर्थात्, संविधान के अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) की भाषा और अध्यादेश में अंतर्विष्ट उपबंधों की प्रकृति की उपेक्षा करती है।

by clause (1) of article 213 of the Constitution of India, theGovernor hereby promulgates the following ordinance."

1985(3) eILR(PAT) SC 1



अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) का कहना है कि उस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित कोई अध्यादेश वैसा ही बल और प्रभाव रखेगा जैसा कि राज्यपाल द्वारा अनुमति प्रदान किया हुआ राज्य विधानमंडल का कोई अधिनियम, किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश (क) राज्य की विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, या, जहां राज्य में विधान परिषद् है, वहां दोनों सदनों के समक्ष और विधानमंण्डल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा या यदि उस अवधि के समाप्त होने से पूर्व विधान सभा द्वारा उसके अननुमोदन का संकल्प पारित कर दिया जाता है और, यदि किसी विधान परिषद द्वारा उस संकल्प के पारित किये जाने पर उसके प्रति सहमति व्यक्त कर दी जाती है या, यथास्थिति, संकल्प पर विधान परिषद् द्वारा सहमति व्यक्त की जा रही है और (ख) राज्यपाल द्वारा इसे किसी भी समय वापस लिया जा सकता है। यह स्पष्ट है कि संविधान का अनुच्छेद 213 यह नहीं कहता कि विधानमंडल द्वारा अननुमोदन के साथ ही अध्यादेश आदितः शून्य हो जाएगा। यह कहता है कि यह प्रवर्तन में नहीं रहेगा। इसका अभिप्राय है कि इसे उस समय तक प्रभावी समझा जाये जबकि अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) में उल्लिखित घटनाओं के घटने पर यह प्रवर्तन में नहीं रहता। दूसरे, अध्यादेश दो पृथक बातों से संबंधित है। अध्यादेश की धारा 3 द्वारा यह अध्यादेश के आरंभ होने पर अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों को समाप्त करता है और यह आगे घोषित करता है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो अंशकालिक ग्राम अधिकारी के पद पर था, उस पद को उस तारीख से धारण नहीं करेगा। धारा 4 और अध्यादेश के अन्य आनुषंगिक उपबंधों में ग्राम सहायकों के पदों के सृष्ट किये जाने और ऐसे ग्राम सहायकों की नियुक्ति और सेवा-शर्तों के सम्बन्ध में उपबन्धित है जो सरकार के पूर्णकालिक कर्मचारी हैं। निःसंदेह, अध्यादेश की धारा 5 में भूतपूर्व अंशकालिक ग्राम अधिकारियों को कुछ राशि के संदाय के लिए एक पृथक् उपबंध है। अब अध्यादेश की धारा 3 के कारण अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के समस्त पद तारीख 6 जनवरी, 1984 को समाप्त हो गए और पिटीशनर राज्य सरकार के कर्मचारी नहीं रहे। ये दोनों बातें इस पर विचार किये बिना कि क्या इन पदों के धारकों को धारा 5 के अधीन कोई रकम संदाय की गई थी या नहीं अथवा ग्राम सहायकों के नये पद भरे गये थे या नहीं, तारीख 6 जनवरी, 1984 को पूर्ण तथ्य बन गई थीं। यदि अनुच्छेद 213 के खण्ड (2) के कारण अध्यादेश को पश्चात्वर्ती तारीख से प्रवर्तन में न माना जाये तो भी अध्यादेश की धारा 3 का प्रभाव अभिव्यक्त विधान के सिवाय अनिवर्त्य था। ठीक ऐसा ही एक प्रश्न इस न्यायालय के संविधान न्यायपीठ के समक्ष **उड़ीसा राज्य** बनाम

**भूपेन्द्र कुमार बोस**[1] वाले मामले में विचारार्थ उठा था। उस मामले के तथ्य इस प्रकार थे। कटक नगरपालिका के लिए निर्वाचन हुए और सत्ताईस व्यक्ति पार्षदों के रूप में निर्वाचित घोषित किये गए। एक पराजित अभ्यर्थी ने निर्वाचन को आक्षेपित करते हुए उड़ीसा उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट पिटीशन फाइल किया। उच्च न्यायालय ने इस आधार पर निर्वाचन अपास्त कर दिए कि मतदाता सूचियां विधि के अनुसार तैयार नहीं की गई थीं। चूंकि राज्य सरकार ने यह महसूस किया कि उक्त विनिश्चय न केवल कटक नगरपालिका के निर्वाचकों को ही प्रभावित करता है अपितु उड़ीसा राज्य की ऐसी कुछ अन्य नगरपालिकाओं को भी प्रभावित करता है जहां मतदाता सूचियों के तैयार करने में ऐसी ही अनियमितताएं की गई थीं, राज्यपाल ने तारीख 15 जनवरी, 1959 को एक अध्यादेश प्रख्यापित किया जिसमें मतदाता सूचियों को विधिमान्य बनाने वाले उपबंध और किसी प्रतिकूल निर्णय के होते हुए भी उनके आधार पर हुए निर्वाचनों से संबंधित उपबंध अंतर्विष्ट थे। तथापि, उक्त अध्यादेश तारीख 1 अप्रैल, 1959 को समाप्त हो गया। जिस पिटीशनर ने पहले रिट पिटीशन फाइल किया था उसी ने अध्यादेश के कारण निर्वाचित पार्षदों के पद पर बने रहने को आक्षेपित करते हुए एक अन्य रिट पिटीशन पुनः फाइल किया। उच्च न्यायालय ने रिट पिटीशन मंजूर कर लिया और निर्वाचित पार्षदों को पार्षदों के रूप में कार्य करने से अवरुद्ध करते हुए एक व्यादेश जारी किया। राज्य सरकार और पार्षदों ने उपर्युक्त अपील इस न्यायालय में फाइल की। यह दलील दी गई कि अध्यादेश एक अस्थायी कानून था जो विहित अवधि के बीत जाने के पश्चात् कालातीत होना ही था और जैसे ही यह कालातीत हुआ, कटक नगरपालिका के निर्वाचकों की अविधिमान्यता पुनः प्रवर्तित हो गई। इस न्यायालय ने **स्टीवेन्सन** बनाम **आलिवर**[2] वाले मामले के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए दलील अस्वीकार कर दी। इस न्यायालय ने अंततः पृष्ठ 401-402 पर निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

> "अब, वर्तमान मामले के तथ्यों पर आएं। अध्यादेश का तात्पर्य कटक नगरपालिका के निर्वाचनों को विधिमान्य बनाना था जो उच्च न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती निर्णय द्वारा अविधिमान्य घोषित कर दिये थे ताकि अध्यादेश के परिणामस्वरूप, कटक नगरपालिका के निर्वाचनों के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि वे विधिमान्य थे।

---

[1] (1962) 2 सप० एस० सी० आर० 380.

[2] 151 इंग्लिश रिपोर्ट्स 1024.

1985(3) eILR(PAT) SC 1



क्या यह कहा जा सकता है कि विधिमान्यकरण का आशय अस्थायी प्रकार का था और वह अध्यादेश के प्रवर्तन-काल के दौरान ही विद्यमान रहना था ? हमारी राय में, अध्यादेश के उद्देश्यों और विधिमान्य बनाने वाले उपबंधों द्वारा सृष्ट अधिकारों को ध्यान में रखते हुए, इस दलील को स्वीकार करना कठिन होगा कि जैसे ही अध्यादेश समाप्त हुआ, निर्वाचनों की विधिमान्यता भी समाप्त हो गई और उनकी अविधिमान्यता पुनः प्रवर्तित हो गई। हमारी राय में, इस अध्यादेश द्वारा सृष्ट अधिकार बिल्कुल उन अधिकारों जैसे ही हैं जिन पर न्यायालय स्टीवेन्सन के मामले में विचार कर रही थी और उन्हें अध्यादेश की समाप्ति के पश्चात् भी अवश्य विद्यमान रहना चाहिए। अध्यादेश में स्पष्ट शब्दों में यह उपबंधित है कि कटक नगरपालिका के निर्वाचनों को अविधिमान्य घोषित करने वाला न्यायालय का आदेश किसी भी विधि प्रभाव का न तो समझा जाएगा और न कभी होगा और उसके द्वारा उक्त निर्वाचन विधिमान्य किये जाते हैं। ऐसा होने के कारण, उक्त निर्वाचन अधिनियम के अधीन विधिमान्यतया आयोजित किए गए समझे जाने चाहिए और नव-निर्वाचित नगरपालिका का कार्यकाल इस अधिनियम के सुसंगत उपबंधों द्वारा शासित होगा और अध्यादेश के अवसान के साथ ही समाप्त नहीं होगा। अतः, हम यह नहीं समझते कि श्री शेट्ठी द्वारा अपीलों के चलने के बारे में आरंभिक आक्षेप कायम रखे जा सकते हैं।"

20. तथापि, यहां हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि संसद् या राज्य विधानमण्डल उन परिस्थितियों को सम्भव बनाने के लिए शक्तिहीन है जैसी कि वे अध्यादेश के पारित होने से पूर्व विद्यमान थीं, चाहे वे अध्यादेश के अधीन पूर्ण और समाप्त विषय क्यों न हों। वह उक्त आशय से भूतलक्षी रूप में प्रवर्तित होने वाली अभिव्यक्त विधि पारित करके अन्य सांविधानिक परिसीमाओं के अध्यधीन रहते हुए प्राप्त किया जा सकता है। तथापि, संसद् या राज्य विधानमण्डल द्वारा किसी अध्यादेश का अननुमोदन मात्र पूर्ण या बंद संव्यवहारों को पुनरुज्जीवित नहीं कर सकता।

21. हमारे समक्ष फाइल किए गए पिटीशनों में भी वैसी ही स्थिति है जैसी कि उपरनिर्दिष्ट विनिश्चयों में थी। चूंकि पदों की समाप्ति और यह घोषणा कि इन पदों के पदधारी अध्यादेश की धारा 3 के अधीन इन पदों के धारक नहीं रहेंगे, पूर्ण घटनाएं हो चुकी थीं, इसलिए उनके पुनरुज्जीवित होने या पिटीशनरों के इन पदों पर और अधिक समय तक बने रहने का प्रश्न ही

नहीं उठता। अतः इस मामले की परिस्थितियों में उपर्युक्त दलील अस्वीकार की जाती है।

22. उपरोक्त को देखते हुए पिटीशनरों की इस दलील पर विचार करना आवश्यक नहीं है कि सरकार को प्रथम अध्यादेश के प्रभाव को बनाए रखने के लिए एक के पश्चात् एक अध्यादेश जारी करने की छूट प्राप्त है क्योंकि प्रथम अध्यादेश ने अपनी धारा 3 द्वारा वांछित फल प्राप्त कर लिया था। यद्यपि अध्यादेश के अन्य उपबंध प्रवर्तन में नहीं रहे थे, उनसे उद्भूत कोई सांविधानिक कठिनाई नहीं हो सकती, क्योंकि राज्य सरकार के लिए संविधान के अनुच्छेद 162 के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए नये पदों को सृष्ट करने की उस समय तक छूट है जब तक उस दिशा में विधानमण्डल के किसी अधिनियम द्वारा या संविधान के अनुच्छेद 309 के परन्तुक के अधीन कोई नियम नहीं बनाए जाते।

23. अगली दलील दी गई कि अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों को समाप्त कर और पिटीशनरों को उनके द्वारा धारित पदों से पदच्युत कर, संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन किया गया है। इस मुद्दे पर विस्तारपूर्वक विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों को समाप्त करके या इन पदों के धार न रहने से पिटीशनर को उनके प्राण और स्वतन्त्रता के अधिकार से वंचित नहीं किया जा रहा है।

24. अन्त में इस बात पर जोर दिया गया कि राज्य सरकार से उन पिटीशनरों के मामलों पर विचार करने के लिए कहा जाए जो ग्राम सहायकों के रूप में नियुक्ति के लिए विहित अर्हताएं रखते हैं। हमें इस बात से अवगत कराया गया कि ग्राम सहायकों के अनेकों पद, जो सृष्ट किए जा रहे हैं, उन अंशकालिक ग्राम अधिकारियों के पदों की संख्या के लगभग आठवां भाग होंगे जो समाप्त किए गए हैं। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस दिशा में विधि की दृष्टि से भी कोई निदेश जारी करना कठिन है। तथापि, हम यह लेखबद्ध करते हैं कि आन्ध्र प्रदेश सरकार के राजस्व विभाग के उपसचिव, श्री बी० वी० जनार्दन रेड्डी द्वारा फाइल किए गए प्रतिशपथ-पत्र के अवतरण 21 में यह लिखा है :—

"इसके अतिरिक्त, सरकार का विचार है कि ऐसे ग्राम अधिकारियों पर भी विहित रूप में अपेक्षित अर्हताएं रखते हैं और

अन्यथा उपयुक्त पाए गए हैं, पदों की उपलब्धता के अध्यधीन रहते हुए ग्राम सहायकों की नियुक्ति के लिए विचार किया जाएगा।"

25. हमें विश्वास है कि राज्य सरकार नियुक्ति करते समय उपरोक्त कथन पर सम्यक् रूप से ध्यान देगी। शपथपत्रों में अंतर्विष्ट कथन पालन किए जाने के लिए अभिप्रेत होते हैं।

26. फलतः ये पिटीशन असफल रहते हैं और एतद्द्वारा खारिज किए जाते हैं। खर्चे के विषय में हम कोई आदेश नहीं करते हैं।

पिटीशन खारिज किये गए।

मदन/कृ०